वाचिक गद्य है नागार्जुन का

कर्मेन्दु शिशिर

वाचिक गद्य है नागार्जुन का

: कर्मेन्दु शिशिर

हिन्दी में कवियों के गद्य पर व्यवस्थित रूप से आलोचनात्मक आकलन का कार्य करने और इस ओर गंभीरता से पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने का काम संभवत: डॉ० रामविलास शर्मा ने शुरू किया। उन्होंने निराला, प्रसाद, महादेवी, शमशेर, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल के गद्य पर गंभीरता से विचार किया। इस लिहाज से हिन्दी आलोचना के सीमित भूभाग को देखा जाय, तो यह परंपरा थोड़ी क्षीण ही सही, लेकिन आज भी बनी हुई है। खासतौर पर नागार्जुन के कथा साहित्य को लेकर हिन्दी में काफी कुछ लिखा गया है। फिर भी, उनके गैर कथात्मक गद्य लेखन को लेकर अभी तक उस तरह से विचार नहीं हुआ, जिस तरह होना चाहिए था। कम से कम उनकी जन्मशताब्दी के इस अवसर पर उनके तमाम अलक्षित पक्षें और अदीठ पहलुओं पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि नागार्जुन की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में ही हुआ हैं। लेकिन उनकी पूरी सृजनात्मकता पर गौर करें, तो आप पायेंगे उनके समग्र आकलन में उनके गद्य की अनदेखी नहीं की जा सकती।

गद्य को कवियों की कसौटी अकारण ही नहीं कहा गया। यह कवि की अंदरूनी बुनावट, उसके सोच-संवेदन, मन-मिजाज और उसके रचनात्मक भूगोल का आईना होता है। उसके अनेक ज्ञात-अज्ञात छवियों के जानने-समझने की सुगम राह उसके गद्य से ही गुजरती है, जिस रास्ते हमारी पहुँच बड़ी आसनी से उसके उस मर्मस्थल तक हो जाती है, जहाँ उसकी सृजनात्मकता का उत्स होता है। मेरा ख्याल है इससे उसके काव्य-प्रदेश में प्रवेश की सहूलियतें भी बढ़ जाती हैं। नागार्जुन भी इसके अपवाद नहीं।

नागार्जुन के बारे में यह बात अक्सर दुहरायी जाती है कि उनका व्यक्तित्व अपनी देशज मिट्टी से रचा-गढ़ा गया था, जिसकी जड़ें अपनी जातीय परंपराओं में गहरे जुड़ी थीं। लेकिन उनके बारे में सिर्फ इतना ही कहना काफी नहीं। असल तलाश उनके मैलिक वैशिष्ट्य की है। उन्हें अपने जनपद मिथिलांचल की सांस्कृतिक परंपराओं की बारीक समझ थी लेकिन उनके पास एक ऐसा सहज और प्रखर विवेक भी था जिससे वे धार्मिक और सामंती रूढ़ियों की पहचान कर सकते थे। उसके जटिल जातीय रिश्तों की उलझनें समझ सकते थे। सबसे बड़ी बात यह कि वे उन्नत प्रगतिशील दृष्टि से उस पर चोट करते हुए एक नई संस्कृति को रेखांकित कर सकते थे। परंपरा और आधुनिकता के इस जटिल रिश्ते को एक सहज आलोचनात्मक विवेक से समय की तर्कसंगति में आधुनिक शक्ल में रूपांतरित करना कोई आसान काम नहीं था। मगर नागार्जुन ने तमाम बाहरी-भीतरी खतरों के साथ इसे संभव किया। यही कारण है कि उनके गद्य में एक ऐसी अंतर्भेदी दृष्टि थी, जिसकी पहचान हम आसानी से उनकी अभिव्यक्ति में मौजूद व्यंग्य की त्वरा से कर सकते हैं। तारीफ यह कि वह ऐसा गद्य है जिसकी बुनावट काव्यात्मक सजलता वाला है, जिसमें अध्ययन और अनुभव के विरल एकत्व को आप हिगरा नहीं सकते। वे जैसा बोलते थे, ठीक वैसा ही गद्य लिखते भी थे। इसी कारण उनके गद्य की मूल प्रकृति में वाचिकता है। इस वाचिकता में अभिनेय भंगिमाएँ हैं, सहज बोधगम्यता है और गहरी आत्मीयता भी है। यही कारण है कि सामान्य जन से उनका तादात्म्य बड़ी आसानी से जुड़ जाता है।

जब भी हम देशज या जातीय परंपरा की बात करते हैं, तो जाहिर तौर पर यह मानते हैं कि इसके सूत्र स्थानिकता से जुड़े होते हैं। यही कारण है कि नागार्जुन अपने तमाम मार्क्सवादी प्रगतिशीलता के बावजूद स्वभाव-संस्कार से एक टिपिकल मैथिल के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। जीवन रस से भरपूर गहरी ललक वाली उनकी स्वादेन्द्रियाँ बार-बार उभरकर अपने तीखेपन के साथ सामने आती हैं- ''हम वहां गुरुद्वारे में टिके थे। बहुत दिनों से मछली नहीं खाई थी, सो जीभ का अच्छी तरह श्राद्ध किया। भूने हुए चने और चावल,